International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 764-766

महाभारत के शान्तिपर्व में उपदिष्ट राजधर्म की अवधारणा

भूपेन्द्र प्रताप सिंह
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

भारतीय लौकिक साहित्येतिहास में लक्षश्लोकात्मक महाग्रन्थ श्रीमद्महाभारत आर्षकाव्य के रूप प्रतिष्ठित है। प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय राजनीति, आचार–विचार तथा लोक व्यवहार के मूल नियम आदि आदर्शो का विशद् वर्णन सम्पूर्ण महाभारत में उद्धृत है। अट्ठारह पर्वों में विभक्त यह विशाल ग्रन्थ प्रत्येक पर्व की विशिष्ट अभिव्यक्ति से अनुप्राणित है। महाभारत महाकाव्य के बारहवें पर्व के रूप में उद्धृत 'शान्तिपर्व' मानव मात्र के साथ–साथ समस्त प्राणिजगत् के कल्याणार्थ उनके समक्ष व्याप्त समस्याओं के सम्यक निराकरण का पर्याय माना जाता है। इस पर्व में भौतिक जीवन की निःसारता से प्राणी को मुमुक्षु बनने का मार्ग उपदिष्ट है। इस पर्व में राजधर्म, आपद्धर्म तथा मोक्षधर्म का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

शान्तिपर्व ततो यत्र राजधर्मानुशासनम्।
आपद्धर्मश्च पर्वोक्तं मोक्षधर्मस्ततः परम्।।[1]

इसमें प्रजा के प्रति शासक अथवा राजा के कर्त्तव्य–विवेचन के अतिरिक्त शासन की गंभीर समस्याओं पर गहन विचार किया गया है। शान्ति पर्व में पितामह भीष्म द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर को राजनीति, धर्म, न्याय, दण्ड तथा पुरूषार्थविषयक उपदेश दिया गया है।[2] हमारा भारतवर्ष महाभारत में उपदिष्ट राजनीति के स्वरूप, सप्ताङ्ग सिद्धान्त एवं उसके उन्नत मूल्यों का अनुकरणकर्त्ता तथा व्याख्याता के रूप में समस्त विश्व में जगद्गुरु के रूप में सर्वप्रसिद्ध है। भारतवर्ष आधुनिक वैश्विक राजनीति से साम्यता रखते हुए अपने तरह की सामाजिक, सास्कृतिक, नैतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विरासत का एक मात्र उपलब्ध उदाहरण है।
शान्तिपर्व महाभारत भयावह युद्ध के समाप्तिकाल के उपरान्त व्याप्त विश्रान्ति अवस्था से सम्बन्धित है। इस पर्व मे विजेता युधिष्ठिरादि पाण्डवों के द्वारा राजा धृतराष्ट्र आदि जीवित कौरव पक्ष के क्रन्दन एवं जीवन के निःसारता से जनित विषाद का वर्णन है।

सुखं वा यदि वा दुःखं भूतानां पर्युपस्थितम्।
प्राप्तव्यमवशैः सर्वं परिहारो न विद्यते।।[3]

युधिष्ठिर द्वारा राजधर्म पालन की अनिच्छा के विरूद्ध भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा पितामह भीष्म के माध्यम से राजधर्म, आपद्धर्म तथा मोक्ष धर्म के विस्तृत ज्ञान प्रदान करने की प्रेरणा दी गयी। पितामह भीष्म ने अपने समय के पूर्व तक प्रचलित ऋषियों–मुनियों के संवादों,आख्यानोपाख्यानों में निबद्ध राजनीति, धर्म एवं दर्शनविषयक ज्ञान का उपदेश किया।

चतुर्ष्वाश्रमधर्मेषु योऽर्थः स च हृदि स्थितः।
राजधर्माश्च सकलानवगच्छामि केशव।।[4]

पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर के राजधर्मविषयक जिज्ञासा को तृप्त करने हेतु राजधर्म के प्रधानस्वरूप, प्रशासनिक तत्त्वों का दृष्टान्तपूर्वक उपदेश किया जिसका संक्षिप्त विवरण समीचीन है। राजा के द्वारा राजधर्म के सम्यक् अनुपालन हेतु राज्य के सप्ताङ्ग सिद्धान्त के विवेकपूर्ण प्रयोग का उल्लेख अपेक्षित होता है।

प्रणेयं राजधर्माणां प्रब्रूहि भरतर्षभ।[5]

पितामह भीष्म ने राजधर्म को समस्त प्रधान धर्मो में श्रेयस्कर माना क्योंकि राजधर्म के सम्यक् अनुपालन के द्वारा ही चातुर्वर्ण्य की सुरक्षा निश्चित होती है। प्राचीन ऋषियों तथा ब्रह्मज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट त्याज्य धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते हुये उसे राजधर्मानुशासन में अन्तर्निहित किया गया।

सर्वे धर्मा राज धर्मप्रधानाः
सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति।
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजं
स्त्यागं धर्मं चाहुरग्यं पुराणम्।।[6]

राजधर्मपालन बाहुबलसम्पन्न शक्तिशाली व्यक्ति द्वारा ही किया जा सकता है। चूँकि चातुर्वर्ण्य व्यवस्थान्तर्गत ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र वर्णो हेतु निर्धारित स्वउपधर्मो की सुरक्षा का दायित्व राजधर्म से ही सुरक्षित रहता है, इसलिए त्रिवर्णों सहित प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले, क्षात्रधर्म पर अवलम्बित क्षत्रियों के लिये संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म राजधर्म ही है।

बाह्मायत्तं क्षत्रियैमानवानां लोकश्रेष्ठं धर्ममासेवमानैः।[7]
रक्षणं सर्वभूतानामिति क्षात्रं परं मतम्।
तद् यथा रक्षणं कुर्यात् तथा श्रृणु महीयते।।[8]

पितामह भीष्म ने राजा हेतु अवलम्बनीय तीक्ष्णता, कुटिलता, अभय–दान, सत्य, सरलता तथा श्रेष्ठभावादि का नियमित पालन अपेक्षित बताया। राजा द्वारा उग्रता, दयालुता, मौन, मधुर वचन, सौम्यता तथा शास्त्रज्ञ आदि अनेक प्रकार के स्वरूप को

समय–समय पर प्रकट करना चाहिए।

तैक्ष्ण्यं जिह्मत्वमादाल्भ्यं सत्यमार्जवमेव च।[9]
बहुरूपस्य राज्ञो हि सूक्ष्मोऽप्यर्थो न सीदति।।[10]

राजधर्म के पालन हेतु राजा द्वारा अपराधी व्यक्तियों को उनके अपराध की प्रकृति के आधार पर दण्ड विधान करना चाहिये। राजा अपनी सेना अर्थात् दण्ड के द्वारा ही देव, दनुज, यक्ष, पिशाच, ऋषि, पितर, महात्मा, साध्यजन एवं पशु–पक्षियों की योनियों में निवासित समस्त प्राणि जगत् के लिये परमकल्याण का हेतु बनता है। इसी पर समस्त सृष्टि अवलम्बित है क्योंकि यह दण्डस्वरूप अङ्ग परमात्मा का ही स्वरूप है।

ईश्वरश्च महादण्डो दण्डे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।[11]

सर्वशक्तिसम्पन्न राजा को अपने शत्रुओं के प्रति सदैव कठोरता रखनी चाहिए, उसे शत्रुपक्ष के समस्त दोषों को जानकर उसका उद्घाटन करना चाहिए। शत्रुपक्ष के मित्रों, सुहृदों को अपने पक्ष में लाने के सकल प्रयास करने चाहिए। अपनी सैन्यशक्ति में वृद्धि करके शत्रु पर आक्रमण कर उसका समूल नाश कर देना चाहिए। इससे राजा के प्रभाव में क्रमिक वृद्धि होती है।

दोषान् विवृणुयाच्छत्रोः परपक्षान् विधूनयेत्।[12]

राजोचित कर्तव्यों के समुचित निर्वहन हेतु योग्य मन्त्रियों, अमात्यों तथा कुशल रणनीतिकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः राजा को अपने कार्यो को सफल बनाने के लिये विधिसम्मत, योग्य, बुद्धिमान्, सद्गुणसम्पन्न मन्त्रियों द्वारा बताये गये कृत्यों कर्त्तव्यों का विनिश्चय करना चाहिए।

आत्मसंयमनं बुद्धया परबुद्धयावधारणम्।
बुद्धया चात्मगुण प्राप्तिरेतच्छास्त्रनिदर्शनम्।।[13]

राजा द्वारा अपने राजकार्यो के निष्पादन हेतु मृदु स्वभाव वाले, विद्वान तथा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति को अपनी सेना की अभिवृद्धि के लिये नियुक्त करना चाहिए। वीणा वाद्ययन्त्र के सप्तसुरों का अनुसरण करते हुए राजा द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों तथा अधिकारियों को योग्यता आधारित कार्यो में नियुक्त कर समानुकूल सद्भाव रखना चाहिए।

मृदुशीलं तथा प्राज्ञं शूर चार्थविधानवित्।
स्वकर्मणि नियुञ्जीत ये चान्ये च बलाधिकाः।।[14]

कुलीन, धर्मज्ञ, मृदुभाषी, कलंकरहित, शिक्षित, जितेन्द्रिय, गोपनीय कृत्यों में सिद्धहस्त व्यक्तियों का चयन करना चाहिए। सम्यक् अनुशीलन द्वारा नियुक्त गुप्तचरों की सहायता से अपने राष्ट्र तथा शत्रुपक्ष की गतिविधियों के गूढ़ मन्त्रणा को ग्रहण कर तदनुसार सावधान होकर राजा को अपने कार्यो का प्रारम्भ और अन्त करना चाहिये।

युक्तः समनुतिष्ठेत तुष्टश्चारैरूपस्कृतः।[15]
चरान् स्वनुचरान् विघात् तथा बुद्धया स्वयं चरेत्।।[16]

अपने योग्यतम गुप्तचरों से सदैव राज्य की गुप्त गतिविधियों को भलीभॉति समझकर स्वविवेक के द्वारा निर्णय करे। हर्ष, विषाद और अमर्ष से समन्वय रखते हुए स्वकर्त्तव्य में निरत राजपुरूष को वसुन्धरा द्वारा राजलक्ष्मी प्राप्त होती है। जिस राजा के द्वारा प्रजा को अनुग्रह–निग्रह समभाव रूप से परीक्षण से प्राप्त हो तथा जो सदैव स्वयं प्रजा और राज्य की सुरक्षा करे, उस विद्वान, धर्माश्रयी राजा में सम्पूर्ण राजधर्म समाविष्ट होता है।

आत्मप्रत्यय कोशस्य वसुदैव वसुन्धरा।[17]
व्यक्तश्चानुग्रहो यस्य यथार्थश्चापि निग्रहः।
गुप्तात्मा गुप्तराष्ट्रश्च स राजा राजधर्मवित्।।[18]

राजा द्वारा राज्यव्यवस्था के समुचित संचालन हेतु कर संग्रह से राजकोषवृद्धि अपनी समस्त प्रजा से धन, धान्य, रत्न, श्रम आदि के रूप में अल्पकर लेकर पूरा करना चाहिए। यह ठीक उसी प्रकार हो जैसा एक मधुमक्खी द्वारा अनेक पुष्पों के परागों के अल्पभाग का संचय किया जाता है, इस प्रकार से प्रजा पर कर का अतिरिक्त बोझ नही पड़ता। अपनी कर नीति को गुप्त रखकर जिस प्रकार आमजन अपनी गाय का पालन–पोषण कर उससे प०चगव्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार राजा को अपनी शासित भूमि का सम्यक् रक्षण करते हुये उसके अन्तः एवं बाह्य तत्त्वों, खनिजों, पदार्थो, रत्नों आदि का उपभोग करना चाहिए।

कालं प्राप्तमुपादद्यान्नार्थं राजा प्रसूचयंत्।
अहन्यहनि संदुहयान्महीं गामिव बुद्धिमान्।।[19]

राजा द्वारा अपने मित्र के चयन में गंभीरता से विचार करना चाहिए क्योंकि अमित्र, शत्रुमित्र राजा के लिये संकट उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिये प्रेम, निष्ठा, समर्पण, हितैषी, आपत्तिकाल में साथ रहने वाला तथा परस्पर मंत्रणा को गुप्त रखने वाले विद्वान् व्यक्ति को मित्र को रूप में स्वीकार करना चाहिए।

प्रीति प्रवृत्तौ विनिवर्तितौ यथा सुहृत्सु विज्ञाय निवृत्य चोभयोः।
यदेव मित्रं गुरूभारमावहेत् तदेव सुस्निग्धमुदाहरेद् बुधः।।[20]

इस प्रकार महाभारत महाकाव्य के बारहवें महापर्व के शान्तिपर्व में पितामह भीष्म ने अपने समय तक प्रचलित एवं आद्य ऋषियों एवं मनीषियों द्वारा उपदिष्ट राजनीतिक कर्त्तव्यों, विचारों व्यवहारों को सुप्रसिद्ध राज्य के सप्ताह, सिद्धान्त के अन्तर्गत उपदेश किया। राजा, मन्त्री, राज्य, पुर, बल (दण्ड, सेना), कोश और मित्र के संघटक द्वारा राजधर्म के सम्यक् प्रयोग से सम्पूर्ण पृथ्वी का कल्याण सुनिश्चित होता है। पितामह भीष्म के द्वारा इन राज्याङ्गों का विधिवत् उपदेश किया गया। उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को अपने द्वारा उपदिष्ट राजधर्म के पालन हेतु प्रेरित किया तथा उन्हें अपने राजकर्तव्यों के समुचित निर्वहन का आदेश दिया। इस प्रकार राजधर्म के अनुकूल आचरण करने वाला राजा अपनी समस्त भूमि तथा समस्त प्रजा के साथ दीर्घकाल तक सुखपूर्वक भोगों का सेवन करता है तथा जीवन के अन्त समय में परमपद को प्राप्त कर लेता है। अतः राजधर्म ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का मूलधर्म है, इसी में सम्पूर्ण जगत् समाहित है।

सर्वो हि लोको नृप धर्ममूलः।[21]

सन्दर्भ

1. महाभारत, शन्तिपर्व – 2–76

2. महाभारत, शन्तिपर्व – 8–21
3. महाभारत, शन्तिपर्व – 28–16
4. महाभारत, शन्तिपर्व – 54–21
5. महाभारत, शन्तिपर्व – 120–2
6. महाभारत, शन्तिपर्व – 63–27
7. महाभारत, शन्तिपर्व – 63–$23\frac{1}{2}$
8. महाभारत, शन्तिपर्व – 120–3
9. महाभारत, शन्तिपर्व – 120–4
10. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–5
11. महाभारत, शान्तिपर्व – 121–1
12. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–11
13. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–18
14. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–23
15. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–29
16. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–32
17. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–30
18. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–31
19. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–33
20. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–55
21. महाभारत, शान्तिपर्व – 120–56